जनसत्ता

संरक्षणवाद के विरुद्ध

दो दिन बाद जापान के शहर ओसाका में जी-20 देशों की बैठक के मुद्दे और प्राथमिकताएं भले कुछ हों, लेकिन इतना तय है कि कारोबारी जंग के मसले पर अमेरिका के खिलाफ आवाज उठेगी। पिछले दो साल में अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने जिस तरह से संरक्षणवादी नीतियों की खुल कर पैरवी की है और अमेरिकी उद्योगों को बचाने के नाम पर चीन, भारत और यूरोपीय संघ के सदस्य देशों के साथ जो कारोबारी रुख अपनाया है, वह चिंताजनक है। इसलिए इस बार बैठक से अलग इस मुद्दे पर भारत, रूस और चीन के बीच बात होगी और भविष्य की रणनीति का खाका तैयार हो सकता है। अमेरिका की संरक्षणवादी नीतियों का सबसे ज्यादा असर चीन पर पड़ रहा है। यों चीन भी ऐसी ही नीतियों को बढ़ावा देने में पीछे नहीं है। इसलिए असली कारोबारी जंग अमेरिका और चीन के बीच ही है। भारत और अमेरिका के बीच भी कई वस्तुओं पर शुल्क लगाने को लेकर तनातनी हुई है। ज्यादातर देश अब महसूस कर रहे हैं कि वक्त रहते अमेरिकी संरक्षणवादी नीतियों का विरोध नहीं किया गया तो वैश्विक कारोबार पर अमेरिकी दादागीरी हावी हो जाएगी और दुनिया के कई देश इससे बुरी तरह प्रभावित हो सकते हैं और उनकी अर्थव्यवस्था को खतरा पैदा हो सकता है।

चीन और अमेरिका के बीच व्यापार युद्ध की शुरुआत पिछले साल तब हुई थी जब अमेरिका ने चीन से आयात होने वाले इस्पात और अल्युमीनियम पर भारी आयात शुल्क लगा दिया था। इसकी प्रतिक्रिया में चीन ने भी अमेरिकी उत्पादों पर भारी आयात शुल्क लगा कर संदेश दिया कि वह कारोबारी जंग में पीछे नहीं हटेगा। अमेरिकी राष्ट्रपति ने तब तर्क दिया था कि चीनी आयात के कारण अमेरिकी कारोबारियों को नुकसान हो रहा है और अमेरिका को पौने चार सौ अरब डॉलर सालाना का नुकसान उठाना पड़ रहा है, इसलिए इसकी भरपाई चीन से ही की जानी चाहिए। अमेरिका ने पड़ोसी देश कनाडा और यूरोपीय संघ के सहयोगी देशों को भी नहीं बख्शा। इन देशों पर भी व्यापार युद्ध की इस रणनीति के तहत आयात शुल्क थोपे गए। हालांकि बदले में उसे भी ऐसी ही कार्रवाई का सामना कर पड़ा। अब जी-20 के सदस्य देशों के सामने यह बड़ा सवाल है कि वे इस बैठक में अमेरिका की संरक्षणवादी नीति के खिलाफ कितनी ताकत से आवाज उठा पाते हैं। फिलहाल भारत, रूस और चीन ने अमेरिकाकी कारोबारी नीतियों के विरोध का फैसला कर लिया है।

दरअसल, भारत और अमेरिका के बीच भी कारोबारी विवाद तब पैदा हुआ जब भारत ने हार्ले डेविडसन की मोटरसाइकिल पर आयात शुल्क पचास फीसद बढ़ाने की बात कही थी। इससे अमेरिका भड़क गया और उसके बाद ही भारत से आयात होने वाले इस्पात और अल्युमीनियम पर भारी उत्पाद शुल्क लगा दिया। फिर जवाबी कार्रवाई में भारत ने भी अमेरिका से खरीदे जाने वाले उनतीस उत्पादों पर शुल्क लगा दिया। सवाल है कि अगर अमेरिका अगर अपने हितों को सर्वोपरि रखता है तो दूसरे देश कैसे अपने हितों से समझौता कर सकते हैं। अगर सारे ताकतवर देश इसी रास्ते पर चलने लगें तो इससे तो वैश्विक व्यापार संतुलन बिगड़ जाएगा और मंदी जैसे बड़े खतरे मंडराते रहेंगे। ट्रंप की निगाहें इस समय अगले राष्ट्रपति चुनाव पर हैं और फिर से राष्ट्रपति बनने के लिए वे तमाम ऐसे कदम उठाएंगे जिनसे अमेरिकी जनता के भीतर उनकी एक मजबूत राष्ट्रपति की छवि बने। ईरान के साथ युद्ध, चीन और अन्य देशों के साथ व्यापार युद्ध ऐसे ही कदम हैं। अब जी-20 की बैठक में अगर ट्रंप पर कोई दबाव बनता है तो यह संतुलन की दिशा में बड़ा कदम हो सकता है।

सुरक्षा का सफर

सड़कों पर यातायात से संबंधित जितने भी नियम-कानून बनाए गए हैं, उसका मकसद मुसाफिरों या वाहन चालकों की सुरक्षा और सुविधा ही सुनिश्चित करना है। लेकिन यह विचित्र विडंबना है कि बेहद मामूली सुविधा से लेकर महज शान बघारने के लिए कुछ लोग उन नियम-कायदों को धता बताने से नहीं हिचकते। जबकि इससे पैदा जोखिम का शिकार वे भी होते हैं। हालांकि इन नियमों का पालन करने के लिए संबंधित महकमे कई बार सख्ती बरतते हैं और इनका उल्लंघन करने वालों को कानूनी तौर पर कैद या आर्थिक रूप से दंडित भी किया जाता है, लेकिन आज भी सड़क पर नियमों के उल्लंघन को रोक पाना मुश्किल काम है। हैरानी है कि लापरवाही बरतने वाले पकड़ में आते हैं तो कई बार बिना किसी संकोच के निर्धारित आर्थिक दंड चुका देते हैं, मगर नियम तोड़ने पर कोई अफसोस जताना जरूरी नहीं समझते। इसलिए अक्सर ऐसे सुझाव सामने आते रहे हैं कि सड़क यातायात नियमों के उल्लंघन पर तय जुर्माने की रकम को इतना कर दिया जाना चाहिए, ताकि आरोपी के लिए उसे चुकाना भारी पड़े और वह भविष्य में ऐसी गलती करने से बचे।

शायद यही वजह है कि सोमवार को केंद्रीय मंत्रिमंडल ने मोटर वाहन (संशोधन) विधेयक के जिस मसौदे को मंजूरी दी है, उसके मुताबिक अब यातायात नियमों के उल्लंघन पर भारी जुर्माना लगाने का प्रावधान किया है। मसलन, बिना लाइसेंस, शराब के नशे में, निर्धारित सीमा से तेज और तय मानकों से ज्यादा लोगों को बिठा कर खतरनाक तरीके से गाड़ी चलाने जैसे नियमों के उल्लंघन पर कड़े जुर्माने का प्रावधान किया गया है। हालांकि जुर्माने की रकम पहले भी कम नहीं थी, फिर भी नियमों को तोड़ने और आर्थिक दंड चुका कर वही गलती दोहराने की प्रवृत्ति में कोई फर्क नहीं आ रहा था। अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि किसी मरीज को आपात स्थिति में ले जाने वाली एंबुलेंस तक के लिए लोग रास्ता छोड़ने को तैयार नहीं होते। जबकि एंबुलेंस के रास्ते में बहुत कम वक्त के लिए भी बाधा बनना उसमे मौजूद मरीज के लिए जानलेवा साबित हो सकता है। दुनिया के कई देशों में मरीज को ले जाती एंबुलेंस का संकेत भर मिलने पर सड़क पर मौजूद लगभग सभी गाड़ियां रास्ता पूरा खाली कर देती हैं, ताकि एंबुलेंस आसानी से आगे निकल जाए।

इसके अलावा, नाबालिगों और किशोरों के वाहन चलाने और नियम तोड़ने की स्थिति में अब वाहन के मालिक या फिर अभिभावक को दोषी माना जाएगा और तीन साल की सजा के साथ-साथ पच्चीस हजार रुपए तक का जुर्माना वसूला जाएगा। यातायात नियमों का खयाल नहीं रखना बुनियादी रूप से लापरवाही और दिखावे के रोग से जुड़ी समस्या है, जिसका न केवल आर्थिक तौर पर, बल्कि कई बार अपने जीवन को भी भारी नुकसान वाहन चलाने वालों को ही भुगतना पड़ता है। कई बार लगता है कि इस मसले पर व्यापक जन-जागरूकता और ऐसे संदेश प्रसारित करने की जरूरत है कि सड़कों पर नियमों का पालन करना सभ्य और बेहतर इंसान होने का परिचायक है, जबकि उसे तोड़ना असभ्यता के साथ-साथ आपराधिक आचरण भी है। चूंकि समाज के ज्यादातर लोग आपराधिक प्रवृत्ति के नहीं होते हैं, इसलिए शायद ही कोई व्यक्ति अपने लिए असभ्य और आपराधिक पहचान को पसंद कर पाएगा। यह कोई छिपी बात नहीं है कि हेलमेट पहनने, सीट बेल्ट बांधने, चौराहे की लालबत्ती पर रुकने जैसे तमाम साधारण यातायात नियमों का पालन नहीं करने की वजह से देश भर में रोजाना न जाने कितने हादसे होते हैं और लोगों की जान चली जाती है। इसलिए नई कानूनी व्यवस्था के जरिए अगर इस पर रोक लगाई जा सकी तो यह सबके हित में होगा।

कल्पमेधा

भूतकाल के अनुभव से समझदार व्यक्ति
भविष्य का अनुमान कर लेते हैं।
– सोफ़ोक्लीज़

सरकार में पेशेवरों की भूमिका

जयंतीलाल भंडारी

हालांकि सरकारी तंत्र में निजी क्षेत्र के पेशेवरों और विशेषज्ञों की नियुक्तियां लाभप्रद दिखाई दे रही हैं, लेकिन इसके सामने कई चुनौतियां भी होंगी। इनमें से प्रमुख चुनौती नियुक्त विशेषज्ञों की गुणवत्ता संबंधी है। दूसरी चुनौती यह है कि विशेषज्ञों और आम नौकरशाहों के बीच तनाव अनिवार्य है। बाहरी पेशेवरों के लिए प्रशासनिक सेवा के नौकरशाहों के साथ मिल कर काम करना आसान नहीं है।

सरकार नौकरशाही के स्वरूप में बदलाव की डगर पर बढ़ रही है। हाल में कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग ने अधिकारियों को विभिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञता रखने वाले निजी क्षेत्र के अधिकारियों को उपसचिव और निदेशक स्तर के पदों पर भर्ती करने के औपचारिक प्रस्ताव तैयार करने को कहा है। सरकारी निर्णय प्रक्रिया में ये पद काफी महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। शुरू में ऐसे कुल चालीस अधिकारियों को नियुक्त किया जा सकता है। ये नियुक्तियां नीति आयोग करेगा। नीति आयोग ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि यह जरूरी है कि विशेषज्ञों को सीधे उच्च पदों पर निश्चित अवधि के अनुबंध पर व्यवस्था में शामिल किया जाए।

इसी प्रकार कॉरपोरेट मामलों के मंत्रालय ने भी कहा है कि सरकार कंपनियों में निजी क्षेत्र के पेशेवरों को स्वतंत्र निदेशक बनने के लिए ऑनलाइन परीक्षा कराने की तैयारी कर रही है। इससे कंपनी कानून, नीतिशास्त्र और पूंजी बाजार की जानकारी रखने वाले ही कंपनी में स्वतंत्र निदेशक बन पाएंगे। आइएलएंडएफएस जैसे घोटालों पर गौर करते हुए सरकार कंपनियों में सुशासन को लागू करने और गड़बड़ियां रोकने के लिए यह कदम उठाने जा रही है। सरकार का मानना है कि विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ अपने क्षेत्रों में प्रशासनिक अधिकारियों की तुलना में अच्छे परिणाम दे सकते हैं। अमेरिका, ब्रिटेन, न्यूजीलैंड जैसे कई देशों में निजी क्षेत्र के पेशेवरों का प्रयोग पर्याप्त रूप में सफल दिखाई दिया है।

यह महत्त्वपूर्ण है कि निजी क्षेत्र के पेशेवरों को सरकारी क्षेत्र में लेने के अभियान का उद्देश्य विभिन्न असाधारण योग्यता वाले अनुभवी पेशेवरों को उनकी प्रतिभा और क्षमता के हिसाब से प्रशासन व देश के विकास में योगदान देने का अवसर सुनिश्चित करना है। इसी वर्ष लोकसभा चुनाव के पहले संघ लोक सेवा आयोग (यूपीएससी) के द्वारा चयनित नौ विभिन्न असाधारण योग्यता वाले अनुभवी पेशेवर विशेषज्ञों को केंद्र सरकार के विभिन्न विभागों में संयुक्त सचिव के पदों पर नियुक्ति दी गई है। सरकारी तंत्र में शुरू हुए निजी क्षेत्र के पेशेवरों के उपयोग के इस अभियान के तहत अपनी सेवाएं देने के लिए देश और विदेश में रहने वाले बड़ी संख्या में भारतीय पेशेवरों ने आवेदन किए थे। इनमें सॉफ्टवेयर डवलपर, डाटा साइंटिस्ट, ग्राफिक डिजाइनर, वीडियो एडिटर, डिजिटल कंटेंट स्क्रिप्ट राइटर, एडवर्टाइजिंग पेशेवर, अकादमिक विशेषज्ञ, सोशल मीडिया विशेषज्ञ और ऐप डवलपर थे। आवेदकों में अमेरिका के कोलंबिया, कॉर्नेल और येल जैसे विश्वविद्यालयों के प्रोफेसरों, एप्पल, गूगल, फेसबुक सहित अन्य प्रमुख वैश्विक कंपनियों में काम करने वाले पेशेवर और वैज्ञानिक भी शामिल हैं।

देश में पहली बार निजी क्षेत्र से पेशेवर योग्यताओं के चलते नियुक्ति पाने वाले संयुक्त सचिवों को नागर विमानन, कृषि, वित्त, नौवहन के साथ-साथ नवीकरणीय ऊर्जा और पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन जैसे मंत्रालयों की जिम्मेदारी दी गई है। अभी इन पदों पर आइएएस अधिकारी करीब पच्चीस साल की सेवा के बाद पहुंच पाते हैं। संयुक्त सचिव के पद पर नियुक्ति का कार्यकाल तीन साल का होगा और अच्छा प्रदर्शन होने पर इसे पांच साल तक किया जा सकेगा। इन पदों पर आवेदन के लिए न्यूनतम उम्र चालीस साल रखी गई थी। वेतन और अन्य सुविधाएं केंद्र सरकार के संयुक्त सचिव के समान हैं।

देश में नौकरशाही में इस तरह कती नियुक्तियों का पहला प्रस्ताव 2005 में आया था। प्रशासनिक सुधार पर पहली रिपोर्ट में इसकी अनुशंसा की गई थी। तब इसे खारिज कर दिया गया था। इसके बाद सन 2010 में प्रशासनिक सुधार अयोग की दूसरी रिपोर्ट में भी इसकी अनुशंसा की गई। 2014 में केंद्र में एनडीए सरकार बनने के बाद 2016 में इसकी संभावना तलाशने के लिए एक कमेटी बनाई गई। इस कमेटी ने इस पर आगे बढ़ने की अनुशंसा की। जुलाई, 2017 में केंद्रीय कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग ने इस संबंध में प्रस्ताव तैयार करने का निर्देश जारी किया था। तब कहा गया था कि नौकरशाही में बाद में शामिल होने वाली इस तरह की पेशेवर प्रतिभाओं के माध्यम से मध्यम स्तर के अधिकारियों की कमी को दूर किया जा सकेगा। इसमें कहा गया था कि इनके चयन के लिए सिर्फ साक्षात्कार होगा और कैबिनेट सचिव के नेतृत्व में कमेटी इनका इंटरव्यू लेगी। सामान्य ग्रेजुएट और किसी सरकारी, पब्लिक सेक्टर यूनिट, यूनिवर्सिटी के अलावा किसी प्राइवेट कंपनी में पंद्रह साल काम का अनुभव रखने वाले इन पदों के लिए

आवेदन दे सकते हैं।

यह महत्त्वपूर्ण है कि निजी क्षेत्र के पेशेवरों को सरकारी क्षेत्र में लेने के इस नए अभियान का उद्देश्य विभिन्न असाधारण योग्यता वाले अनुभवी पेशेवरों को उनकी प्रतिभा और क्षमता के हिसाब से प्रशासन व देश के विकास में योगदान देने का मौका सुनिश्चित करना है। निजी क्षेत्र के विशेषज्ञों को विशिष्ट वेतन भत्तों के साथ नौकरशाही में सीधे शामिल करने को विभिन्न सरकारों के उन प्रयासों की निरंतरता के साथ देखा जा सकता है जिसके तहत सरकारें शासन में बाहर से विशेषज्ञता लाना चाहती थीं। अब निश्चित रूप से अनुभवी कुशल पेशेवर प्रशासन का सक्रिय भाग बन कर देश के विकास को गति दे सकते हैं। पहले भी विभिन्न प्रधानमंत्रियों के द्वारा कुछ-कुछ प्रतिभाओं और पेशेवरों को सरकार के कार्यों में सहयोग के लिए जिम्मेदारी सौंपी जाती रही है। यूपीए सरकार के दूसरे कार्यकाल में नंदन नीलेकणि को लाया गया था और उन्हें आधार कार्ड पर काम करने के लिए अधिकार दिए गए। इंदिरा गांधी भी नियमित रूप से कारोबारी जगत की प्रतिभाओं को बेहतर उपयोग में लाती रही थीं। दूरसंचार में क्रांति के लिए राजीव गांधी सैम पित्रोदा को लाए थे। अटल बिहारी वाजपेयी ने आरवी शाही को बिजली सचिव की महत्त्वपूर्ण भूमिका दी थी, जिसके बेहतर नतीजे देखने को मिल रहे हैं। वीपी सिंह ने अरुण सिंह को देश के रक्षा संगठन का आधुनिकीकरण करने की जिम्मेदारी सौंपी थी। पीवी नरसिम्हा राव भी हरसंभव बेहतरीन प्रतिभाएं जुटाने में सफल हुए। वे मनमोहन सिंह को लाए और उन्हें सीधे वित्त मंत्री बना दिया। मनमोहन सिंह के वित्त सचिव मोंटेकसिंह आहलूवालिया ने भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। ऐसे में अब सरकारी सेवा में देरी से प्रवेश से देश और विदेश की कुशल प्रतिभाओं और पेशेवरों का प्रशासन व सरकारी कार्य में सहयोग लेने का जो अभियान चलाया गया है, वह अवश्य लाभप्रद होगा।

हालांकि सरकारी तंत्र में निजी क्षेत्र के पेशेवरों और विशेषज्ञों की नियुक्तियां लाभप्रद दिखाई दे रही हैं, लेकिन इसके सामने कई चुनौतियां भी होंगी। इनमें से प्रमुख चुनौती नियुक्त विशेषज्ञों की गुणवत्ता संबंधी है। दूसरी चुनौती यह है कि विशेषज्ञों और आम नौकरशाहों के बीच तनाव अनिवार्य है। बाहरी पेशेवरों के लिए प्रशासनिक सेवा के नौकरशाहों के साथ मिल कर काम करना आसान नहीं है। जिन लोगों को विशेषज्ञों और पेशेवरों के रूप में चुना जा रहा है, उनके लिए फाइलों और मंत्रियों की बैठक तक पहुंच बनाना भी आसान नहीं है। ऐसे में काफी कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि राजनीतिक कार्यपालिका इन बाहरी विशेषज्ञों को किस हद तक काम करने देती है। पिछली बार इस तरह की सरकारी नियुक्ति की जो प्रक्रिया शुरू हुई है, उसकी उपयुक्तता पाई गई है। अब सरकार द्वारा नियामकीय प्रमुखों की खोज का दायरा बढ़ाया जा रहा है। देश के निजी क्षेत्र में प्रतिभाओं की भरमार है। सरकार इनकी सहायता से अपने नीतिगत निर्णयों की प्रक्रिया में सुधार कर सकती है। उम्मीद की जानी चाहिए कि सरकार देश और विदेश में गहरा कार्य अनुभव रखने वाली प्रतिभाओं का प्रशासन में पूरा लाभ उठाएगी। अनुभवी प्रतिभाओं और पेशेवरों की नियुक्ति के लिए जो अभियान शुरू हुआ है, उससे प्रशासन में अच्छे पेशेवर आएंगे और देश को आर्थिक शक्ति बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे।

उम्मीद के साथ

रजनीश जैन

दुनिया मेरे आगे

आधुनिक जीवनशैली अपने साथ कुछ विकारों को भी साथ ले आई है। मनुष्य को कॅरियर और रिश्तों को बनाए रखने के लिए भारी जद्दोजहद करनी पड़ रही है। उसकी सहनशीलता और धैर्य का पैमाना भौतिकता की तुलना में उस गति से नहीं बढ़ा है, जिस गति से बढ़ना चाहिए था। आमतौर पर हरेक मनुष्य की आकांक्षा होती है कि उसे उसी रूप में स्वीकार कर लिया जाए, जिस रूप में वह इस समय मौजूद है। लेकिन ज्यादातर मामलों में ऐसा होता नहीं है। हरेक व्यक्ति बेहतर की तलाश में है। फिर वह साथी की तलाश हो या उम्मीदवार की। जब चयन करने वाला अपने उपयुक्त व्यक्ति को नहीं पाता तो परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से अपनी असहमति व्यक्त कर देता है। यही वह बिंदु है जहां 'अस्वीकृत' व्यक्ति अपने अंदर कुछ दरकता हुआ महसूस करता है।

कुछ लोग इसे जीवन का नियम मानते हुए स्वीकार कर आगे बढ़ जाते हैं, लेकिन बहुत सारे इस इनकार को आसानी से नहीं पचा पाते। समय आगे बढ़ जाता है, मगर वे उसी लम्हे में फंस कर रह जाते हैं। यह एक ऐसी मनोवैज्ञानिक स्थिति होती है जब आप अपनी मनोव्यथा किसी को बता कर मन का बोझ हल्का नहीं कर सकते। मन में यही विचार बार-बार कौंधता है कि आप अपनी 'पराजय' को सार्वजनिक चर्चा बनाने का मौका दे रहे हैं। आपको लगता है कि अब से आप एक पराजित व्यक्ति मान लिए जाएंगे। आखिर वे कौन-सी परिस्थितियां रहीं और ऐसा क्यों हुआ होगा कि अपना दुख साझा करने को हमने अपने पराजित होने के रूप में देखना शुरू कर दिया होगा!

मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि हम सबसे पहले जिस विचार को हवा देते हैं, वह उसी तरह के सैकड़ों विचारों को हमारे दिमाग का रास्ता दिखा देगा। पहला विचार सकारात्मक या नकारात्मक कुछ भी हो सकता है। इस उलझन को समझने के लिए खुद के साथ प्रयोग किया जा सकता है। हम अपने दिमाग में यह बात लाएं कि हम कल सुबह पांच बजे उठेंगे। इसी क्षण के साथ हमारा दिमाग हमें सकारात्मक विचारों की श्रृंखला से भर देगा। हरेक नया विचार हमें सुबह जल्द उठने के फायदे से लेकर सुबह के सदुपयोग जैसे विचारों से भर देगा। इसके विपरीत हम सोचें कि मैं आज तक तो जल्दी नहीं उठा, अब जल्दी उठ कर क्या होगा? ऐसा सोचने के बाद हम पाएंगे कि हमारा दिमाग कितनी दृढ़ता से हमारे विचार के समर्थन में ठोस तर्कों की बौछार कर देगा। हम यह मानने को तैयार हो जाएंगे कि हमारा दिमाग सही राय दे रहा है। जबकि विचार-श्रृंखला की शुरुआत हमने ही की थी। हालांकि इस बात का हमें शायद अहसास भी नहीं होगा!

किसी व्यक्ति से अस्वीकृति या 'रिजेक्शन' के कुछ क्षणों या दिनों को ही गंभीरता से लेने की आवश्यकता है। समय के इस दौर में उठाया गया कोई भी गलत कदम हमें गहरी निराशा के दलदल में धकेल सकता है। इसके संकेतों को समझने के लिए 'अस्वीकृत' व्यक्ति पर गहरी नजर रखना जरूरी है। सबसे पहली बात जो उसके स्वभाव में नजर आएगी वह यह कि सबसे पहले उसकी उन कामों में दिलचस्पी खत्म होने लगेगी, जिनमें वह पारंगत था। उसका व्यवहार लापरवाह हो जाएगा और रहन-सहन में चुस्ती-फुर्ती गायब हो जाएगी। इस मोड़ पर ही उसे मदद की सबसे ज्यादा जरूरत होगी।

ऐसे समय में उसकी मदद उसके सबसे निकटस्थ साथी से आ सकती है। अक्सर परीक्षा परिणामों के बाद कुछ विद्यार्थी अपने को नहीं संभाल पाते हैं और अपनी जीवन लीला समाप्त कर लेते हैं। आमतौर पर व्यक्ति अपने आप से इतनी अपेक्षा कर लेता है कि जो तर्कसंगत नहीं होती। जीवन के सामने सारी भौतिक और मानसिक आकांक्षाएं गौण हैं। अथक प्रयासों के बाद भी कुछ हासिल न हो तो अपने को दोष न दें। व्यावहारिकता यह सिखाती है कि शिखर पर सब नहीं पहुंच सकते, क्योंकि वहां इतनी जगह ही नहीं है। निचले पायदान का व्यक्ति भी अपने काम को बेहतर करते हुए या तो शिखर पर पहुंच कर सकता है या फिर अपने पायदान को भी गौरवान्वित कर सकता है। यहां बरसों पहले दूरदर्शन पर प्रसारित विख्यात खलनायिका ललिता पंवार का साक्षात्कार याद आता है, जिसमें वे बता रही थीं कि आपको किसी भी काम के लिए रखा गया है तो आपका प्रदर्शन इस तरह का होना चाहिए कि लोग उसकी भी मिसाल दें कि यह काम फलां से बेहतर कोई दूसरा नहीं निकाल सकता। विदित हो कि ललिता पंवार द्वारा निभाए गए क्रूर सास के पात्र आज भी लोगों के जेहन में मौजूद हैं।

विख्यात गायक रिकी मार्टिन ने क्या खूब कहा है- 'अगर कोई आपको खारिज कर दे, तो निराश न हों। लोग अक्सर मूल्यवान चीजों को नकार देते हैं, क्योंकि वे उनका भार नहीं उठा सकते।' यह बात सकारात्मक विचारों को अपनाने में मदद कर सकती है।

संस्कृत की उपेक्षा

हाल में नई शिक्षा नीति के मसौदे में तीन भाषा फॉर्मूले के अंतर्गत हिंदी भाषा को अनिवार्य बनाने पर दक्षिणी राज्यों समेत अन्य जगह पर जिस प्रकार विरोध हुआ और सरकार को हिंदी अनिवार्य न करने का आश्वासन देना पड़ा, ठीक उसी प्रकार सीबीएसई ने अगस्त 2014 में हफ्ते भर तक सभी स्कूलों में संस्कृत सप्ताह मनाने और संस्कृत भाषा से बच्चों को रूबरू कराने को कहा था। इस पर भी काफी विवाद हुआ था और कई राजनीतिक दलों ने तो इसे कट्टरपंथ तक कह डाला था। इससे यह पता चलता है कि हमारा वर्तमान समाज इस अनुरूप ढल चुका है कि हम सुधारात्मक प्रक्रिया में नहीं, बल्कि निजी हित और क्षणिक लाभ में विश्वास करने लगे हैं। सामुदायिक सोच का दायरा सिमट चुका है। वैश्वीकरण के आधुनिक प्रगतिशील समय में बाजारवाद हम पर हावी हो चुका है जो हमे संरक्षण के स्थान पर उपभोग को तवज्जो देता है। यही मूल वजह है कि वर्तमान में हमारी परंपरागत भाषाओं पर अन्य भाषाएं हावी होती जा रही हैं और लोग उन्हें तव्वजो भी दे रहे हैं। वर्तमान समय में संस्कृत भाषा के प्रति भारतीय छात्रों के मन में हीन भावना और 'अनुपयोगी' भाषा की छवि बन चुकी है। बेहतर कैरियर और अवसर के अभाव की भावना के कारण वे इस भाषा से विमुख होते जा रहे हैं। स्कूलों में भी संस्कृत भाषा पढ़ाने पर बिल्कुल भी पहल नहीं की जा रही है। आज देश के चौदह प्रमुख संस्कृत विश्वविद्यालयों की हालत बदतर है। उनमें पैसे की कमी के साथ साथ आवश्यक सुविधाएं, शिक्षकों और छात्रों का अभाव है।

इन सारी कमियों के पीछे बुनियादी कारण यह है कि आजादी के सात दशक बाद भी सरकार द्वारा संस्कृत को कोई प्रोत्साहन नहीं दिया गया। संस्कृत को रोजगारोन्मुख बनाने के लिए नीति नहीं बनाई गई, आधुनिक शिक्षा प्रणाली से संस्कृत भाषा को जोड़ा नहीं गया, विश्वविद्यालयों में पैसे की कमी से शिक्षक नहीं हैं, प्राथमिक स्तर पर स्कूली शिक्षा में संस्कृत को अध्ययन की भाषा के रूप में बढ़ावा नहीं दिया और अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में भी संस्कृत को अनिवार्य नहीं किया गया। हमें समझना चाहिए कि संस्कृत वैज्ञानिक भाषा ही नहीं, बल्कि विचार, संस्कृति और भारतीय संस्कार है जिसमे विश्व-कल्याण, शांति-सहयोग, एकता, समरसता, बंधुत्व और वसुधैव कुटुंबकम की भावना निहित हैं। बाबा साहब भीमराव आंबेडकर ने कहा था कि संस्कृत ही पूरे भारत को भाषाई एकता में बांध सकती है।

● *शिवांशु राय, दिल्ली विश्वविद्यालय*

परिचय दे रहे हैं, स्वयं उनका धर्म ऐसे कृत्यों को घृणित समझता है। भारत एक ऐसा पंथनिरपेक्ष देश है जो हिंदू, जैन, बौद्ध जैसे धर्मों का उद्गम स्थल रहा है और यहां की संस्कृति सभी धर्मों को सम्मान भी देती है। परंतु कुछ संकीर्ण सोच के लोग इसकी छवि को धूमिल करने में लगे हैं जो चिंताजनक और शर्मनाक है। देश व प्रदेश की सरकारों को ऐसे मामलों में कठोर कदम उठाने चाहिए। समाज को भी ऐसे लोगों का बहिष्कार करना होगा जो सामाजिक तानेबाने को कमजोर करने पर तुले हैं।

● *मंजर आलम, रामपुर डेहरू, मधेपुरा*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

भीड़ की हिंसा

किसी न किसी आरोप की आड़ में देश में भीड़ द्वारा हत्या की घटनाएं निरंतर बढ़ती जा रही हैं। आश्चर्य है कि लोगों में कानून का जरा भी भय नहीं रह गया है, बल्कि उसका वीडियो बना कर सोशल मीडिया पर डाल देते हैं। पीड़ित को धर्म विशेष के नारे लगाने पर विवश किया जाता है। सवाल है कि क्या जबरदस्ती भय के साए में विशेष धार्मिक नारे लगवाने से पीड़ित का अपना धर्म बदल जाता है या फिर वह उस धर्म का अनुयायी हो जाता है। निसंदेह धर्म आस्था से जुड़ा होता है और उसे किसी पर जबरदस्ती थोपा नहीं जा सकता। अगर प्रताड़ित कर ऐसा किया जाता है तो कदापि उचित नहीं है। सभ्य समाज इसे कभी स्वीकार नहीं सकता। संकीर्ण मानसिकता के लोग अपने व्यवहार से जिस दुस्साहस का

अवसरवाद का रोग

हरियाणा में दलबदल की राजनीति तेज हो गई है। बेहतर छवि वाले भाजपा विरोधियों को शामिल करने की मुहिम चलाई जा रही है। प्रश्न यह नहीं है कि दलबदल होना या नहीं होना चाहिए? प्रश्न यह है कि आखिर दलबदल कितना लोकतंत्रिक है? ज्यादातर यह देखने में आया है कि सत्ता सुख पाने के इरादे से ही अवसरवादी दलबदल करते रहे हैं, फिर चाहे स्थानीय संस्थाएं हों या विधानसभाएं अथवा लोकसभा और राज्यसभा। बड़ी पार्टियां सत्ता के लिए बहुमत लाने अथवा बहुमत को मजबूत बनाने के लिए दलबदल का खेल खेलती रहती हैं। वास्तव में देखा जाए तो दलबदल को लोकतांत्रिक तो नहीं कह सकते। हां, इसे अवसरवादी अवश्य कहा जा सकता है, जिसमें व्यक्तिगत और संस्थागत दोनों स्वार्थ साफ-साफ जुड़े नजर आते हैं। अनेक बार दलबदल कानून लाने के लिए आवाजें उठी हैं, किंतु स्वार्थ की राजनीति के चलते और अवसरवादी भावना के मद्देनजर यह आवाज ठंडे बस्ते में ही चली गई। देखा जाए तो दलबदल लोकतंत्र के लिए ठीक नही है और न ही लाभकारी। अवसरवादियों के लिए भले ही ये फायदेमंद हो। इस पर खुली बहस होना चाहिए और अवसरवादिता के खिलाफ व लोकतंत्र की मजबूती के लिए यह बंद होना चाहिए. क्योंकि मतदाता जिन्हें, जिस पार्टी के लिए और जिस उद्देश्य हेतु चुनते हैं, यह उनके मतों और विचारों के प्रति कुठाराघात ही माना जाना चाहिए।

● *महेश नेनावा, इंदौर*

प्रदूषित नदियां

आज भारत में प्रदूषण एक बड़ी समस्या बन गई है। नदी जल प्रदूषण भी ऐसी ही गंभीर समस्या है। उद्योगों से निकलने वाला जहरीला जल और रसायन नदियों को ज्यादा प्रदूषित कर रहे हैं। इस दूषित जल की वजह से नदियों के कई जीव-जंतु, पशु-पक्षी और सीधे प्रभावित हो रहे हैं। आज इस दूषित जल को पीने की वजह से कई जानलेवा बीमारियां फैल रही हैं, जैसे- टाइफाइड, पीलिया, पेट से संबंधित अन्य बीमारियां आदि। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इस पानी को साफ करने के नाम हर साल करोड़ों रुपए खर्च किए जाते हैं। लेकिन नतीजा कुछ नहीं निकलता। गंदे पानी से हर साल देश में सात लाख से ज्यादा लोग मर जाते हैं। विडंबना यह है कि विकसित देशों में प्रदूषित जल व गंदगी से मरने वालों की तादाद एक फीसदी से भी कम है। संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट की मानें तो पीने के साफ पानी और साफ-सफाई की उचित व्यवस्था करने पर समूची दुनिया में तकरीब सात अरब 34 करोड़ डालर बचाए जा सकते हैं। साथ ही दस अरब डालर की सालाना उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है।

● *अमित कुमार, दिल्ली विवि*

नई दिल्ली